

‘गुर प्रसादि’

संसार में परमेश्वर के विषय में भिन्न – भिन्न ख्याल, कल्पनाएँ, निश्चय तथा स्वरूप माने गए हैं तथा अपने – अपने ‘मनोकल्पित’ स्वरूप को प्रसन्न करने के लिए अलग – अलग कर्म – काण्ड, पाठ – पूजा तथा कुरबानियाँ की जाती हैं, जिन्में से पशुओं की बलि आम प्रचलित है। कई स्थानों पर देवताओं को प्रसन्न करने के लिए मनुष्यों की भी बलि दी जाती है। इसके अतिरिक्त बड़े दुख की बात है कि धर्म के नाम पर अत्यन्त हृदय – बेधक असह्य तथा अकथनीय अत्याचार किये जाते हैं।

यह सब अनोखे हृदय विदारक कर्म – काण्ड, हृदय – बेधक कुरबानियाँ तथा घृणा – योग्य अत्याचार अपने इष्ट, देवता या भगवान को खुश करने के लिए किये जाते हैं। इनका मन्तव्य साधारणतया यह होता है –

दुख – क्लेश से बचने के लिए।

निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए।

वैर – विरोध या बदला लेने के लिए।

अपनी मुक्ति या कल्याण के लिए।

परमेश्वर को खुश करके या रिझा कर, उसकी कृपा अथवा बख्शिशाओं की लालसा के लिए किये गये यह थोथे कर्म – काण्ड, बलि या जुल्म गुरबाणी में वर्जित हैं तथा इनकी बहुत निन्दा की गयी है।

मनमुखि हुकमु न बूझे बपुड़ी नित हउमै करम कमाइ ॥

वरत नेमु सुच संजमु पूजा पारवंडि भरमु न जाइ ॥

अंतरहु कुसुधु माइआ मोहि बेधे जिउ हसती छारु उडाए ॥

जिनि उपाए तिसै न चेतहि बिनु चेतै किउ सुखु पाए ॥ (पृ १४२३)

कूर क्रिया उरझिओ सभ ही जग

श्री भगवान को भेदु न पाइओ ॥

(सवैयै पा. १०)

इलाही बरिष्वाश अथवा **गुरुप्रसादि (Grace)** की व्याख्या गुरुबाणी कुछ और ही करती है ।

इस लेख द्वारा, गुरुबाणी के प्रकाश में **‘गुरु-प्रसादि’** के विषय में विचार प्रस्तुत किए जाते हैं –

‘गुरु-प्रसादि’ के शाब्दिक अर्थ हैं – गुरु की बरिष्वाश द्वारा

गुरुबाणी के प्रारम्भ में, परमेश्वर के मंगलाचरण में, सतिनामु करता पुरुखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं’ के पश्चात् **‘गुरु-प्रसादि’** अंकित है। इसका तात्पर्य यह है कि यह जो बाणी की रचना की जा रही है, यह गुरु के **‘प्रसादि’** अथवा गुरु की बरिष्वाश का परिणाम है । इसी कारण **‘धुर की बाणी’** को परमेश्वर की **‘इलाही बरिष्वाश’** अथवा **‘गुरु-प्रसादि’** कहा गया है तथा बाणी में अनेक स्थानों पर **‘सतिगुरु प्रसादि’** का प्रयोग किया गया है ताकि हमें बार-बार याद आता रहे कि यह बाणी अकाल पुरुष की **‘बरिष्वाश’** या **‘देन’** है। अकाल पुरुष ने असीम कृपा करके, हमारे कल्याण के लिए इस बाणी की रचना की है ताकि गुरुबाणी के **‘आत्मिक-प्रकाश’** में, आत्मिक ज्ञान तथा इलाही उपदेशों द्वारा हम अपने जीवन को उचित मार्गदर्शन देकर संसार-यात्रा सफल कर सकें ।

जनु नानकु बोलै अंम्रित बाणी ॥

गुरु सिखां कै मनि पिआरी भाणी ॥

उपदेसु करे गुरु सतिगुरु पूरा

गुरु सतिगुरु परउपकारीआ जीउ ॥

(पृ. ९६)

इसके अतिरिक्त गुरुबाणी में अनेक बार **‘गुरु-प्रसादि’** शब्द प्रयोग किया गया है, जो गुरु के **‘प्रसादि’** या गुरु की **‘बरिष्वाश’** का **‘प्रतीक’** है ।

‘बरिष्वाश’ वह दात है, जिसके लिए हमने कोई यत्न न किया हो, जिस पर हमारा कोई अधिकार न हो, अपितु **पूर्णतया परमेश्वर की कृपा एवं प्यार की ‘देन’** हो ।

परमेश्वर को गुरुबाणी में **‘प्रीतम’**, **‘प्रेम पुरुख’**, **‘प्रिय’**, **‘माता’**, **‘पिता’**,

‘बंधप’ आदि अनेक भावनाओं के रंग में देखा तथा वर्णित किया गया है ।

तू मेरा पिता तू है मेरा माता ॥

तू मेरा बंधपु तू मेरा भ्राता ॥

(पृ १०३)

माता पिता बंधप तू है तू सरब निवासु ॥

नानक प्रभ सरणागती जा को निरमल जासु ॥

(पृ ८१८)

इन सभी भावनाओं में ‘प्रीत’, ‘प्रेम’, ‘प्यार’ की झलक है । इस इलाही ‘प्रेम – भावना’, ‘प्रेम रस की मूरत’ (embodiment of love) को ही परमेश्वर कहा गया है । वास्तव में परमेश्वर स्वयं ‘प्रेम – स्वरूप’ (god is love) है । इसी कारण परमेश्वर को ‘प्रिय’, ‘प्रीतम’, ‘प्रेम पुरुष’ कहा गया है ।

हमारी दृष्यमान दुनियाँ में, इस इलाही ‘प्रेम – रस’ के प्रतिबिम्ब का विशेष प्रकटाव, माँ के हृदय में प्रवाहित है। इसलिए इलाही प्यार को समझाने के लिए ‘माँ – प्यार’ एक उपयुक्त उदाहरण है।

माँ का हृदय, अपने बच्चे के प्रति अथाह प्रेम से भरा हुआ है । माँ हमेशा अपने बच्चे के अवगुणों का ध्यान न करते हुए, उसके ‘प्यार के रंग’ में रंगी रहती है तथा उसके लिए हर प्रकार की कुरबानी करती हुई अपना ‘आप’ न्यौछावर करती रहती है । वह उसकी शुभचिंतक होने के कारण, सदा ही उसका कुशल – मंगल सोचती, इच्छाकरती तथा अभ्यास करती है । यदि बच्चा भूल भी करता है तब उसका सुधार करने के लिए डाँट – फटकार भी लगाती है । परन्तु फिर भी माँ के हृदय की गहराईयों में बच्चे के लिए ‘माँ – प्यार’ की भावनाएँ एवं शुभ इच्छाएँ उसी प्रकार सदैव ओत – प्रोत होकर उमड़ती रहती है, क्योंकि वह बच्चा उसका अपना ‘अंश’ है । इस प्रकार ‘माँ’ अपने बच्चे के लिए ‘सद बरिष्णंद’, सदा मिहरवानी तथा अउगुण को न चितारदा’ वाले दैवीय गुणों को अपनाती, प्रकट करती तथा पालन करती है । इसी से हमें इन इलाही गुणों की पहचान होती है तथा इन दैवीय गुणों पर विश्वास आता है । परमेश्वर ने माँ के हृदय में यह इलाही गुण ‘प्यार’, ‘बरिष्णंश’, ‘अउगुण न चितारना’ तथा ‘स्वयं को न्यौछावर करना’ आदि, अति गहरे तथा बहुलता में इसलिए भरे हैं ताकि माँ, अपने बच्चों को उनकी लापरवाइयों, त्रुटियों, गलतियों तथा शरारतों के बावजूद भी खुशी – खुशी व प्रेम से पाल सके तथा वह जीवन के कठिन क्षेत्र में विचरण करने योग्य तथा कठिनाइयों का सामना करने योग्य बन सकें ।

इसके इलावा जब कभी बच्चा माँ की ओर प्रेम से देखे अथवा प्यार की कोई नन्हीं सी सेवा या प्यार का प्रदर्शन करे, तब 'माँ' का सहज (normal) 'प्यार' उछल पड़ता है। माँ का कोमल हृदय गद्गद् हो जाता है तथा बच्चे को चूम-चूम कर, लाड लडा कर, प्यार की बौछार कर देती है। माँ के हृदय से अनन्त शुभकामनाएँ तथा आशीर्वाद फूट-फूट कर निकलते हैं। माँ के इस अनोखे एवं सूक्ष्म प्यार को 'नदरि निहाल' कहा जा सकता है।

यह साँसारिक 'माँ-प्यार' मनुष्यों के अतिरिक्त पशु-पक्षियों में भी देखा गया है, यह केवल अपने बच्चे के लिए ही होता है तथा इसमें 'मैं-मेरी' एवं त्रिगुणी माया की रंगत होती है। इसलिए यह 'माँ-प्यार' अधूरा एवं सीमित है तथा निर्मल इलाही प्यार नहीं कहला सकता। इसलिए साँसारिक प्यार को गुरुबाणी में मोह कहा गया है जिसके बन्धनों में फँसने से हमें सावधान किया गया है लेकिन फिर भी सृष्टि में सूक्ष्म तथा निर्मल इलाही प्यार का सुन्दर एवं उपयुक्त बाह्यमुख उदाहरण तथा प्रतीक 'माँ प्यार' ही है।

माँ-प्यार का उपरोक्त उदाहरण केवल हमारी मोटी स्थूल बुद्धि को समझाने के लिए दिया गया है। परन्तु यह 'मोह' रूप प्यार है, जो त्रिगुणी-माया का विषय होने के कारण अधूरा एवं सीमित है।

अब हम गुरुबाणी के प्रकाश में 'परमेश्वर-रूपी माँ' - इलाही माता के निर्मल, पूर्ण, अथाह, अगोचर तथा आश्चर्यजनक 'प्यार' के विषय में विचार करेंगे।

परमेश्वर को गुरुबाणी में अनेक रंगों तथा भावनाओं द्वारा सम्बोधित किया गया है, जैसे कि 'माता', 'पिता', 'प्रिय', 'प्रेम पुरुष' आदि। यहाँ पर हम केवल परमेश्वर की 'माँ-भावना' के विषय पर विचार कर रहे हैं।

त्रिगुणों के मायिकी दायरे में 'माँ' अपनी कोख से बच्चे को जन्म देती है, इसी कारण उसका अपने बच्चे से इतना गहरा तथा तीव्र प्रेम होता है। यह साँसारिक 'मा-प्यार' भी इलाही 'माँ प्यार' का ही धुंधला सा प्रतिबिम्ब (cloudy reflection) है।

देखण को परपंच कीआ' अनुसार, परमेश्वर ने अपनी मौज में, अपनी इलाही

शक्ति 'कवाओ' द्वारा 'इलाही खेल' खेलने के लिए, इस सारी अनन्त मायिकी सृष्टि की रचना की तथा इसमें अपनी 'ज्योति' रख दी ।

इस सृष्टि को कुदरत द्वारा उत्पन्न करने, संभालने तथा चलाने के लिए 'त्रिगुणी-माया' की रचना की, जो उसके इलाही कानून - 'रज़ा' या 'हुक्म' में सहज ही चल रही है । यदि इस पदार्थिक संसार में उसकी 'ज्योति' न होती तथा सृष्टि को चलाने के लिए इलाही 'हुक्म' न होता, तब पदार्थिक निर्जीव दुनियां बेलगाम होकर, आपस में टकरा-टकरा कर तबाह हो जाती । परन्तु सृष्टि की हर चीज़ किसी अटल, त्रुटिहीन तथा पूर्ण 'हुक्म' की तार में पिरोयी हुई सहज ही अपना अपना कर्तव्य निभा रही है । इस प्रकार युगों-युगों से यह सृष्टि इलाही 'हुक्म' में चलती आयी है, चल रही है तथा चलती रहेगी ।

जिस प्रकार सूर्य में से धूप निकलती है तथा धूप की किरणों में सूर्य के सारे गुण होते हैं, जैसे गर्मी, प्रकाश, शक्ति तथा जीवन सत्ता आदि ।

परन्तु गर्मी विशेष गुण है जिसमें से अन्य सभी गुण अपनी शक्ति या जीवन-रौं (जीवन-धारा) ग्रहण करते हैं । दूसरे शब्दों में सूर्य में गर्मी मूल शक्ति दाता है जिसमें अन्य सभी गुण 'शक्ति', 'अस्तित्व' तथा जीवन लेते हैं। इसी प्रकार साँसारिक 'माँ-प्यार' या 'मोह' में से बच्चे की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माँ के हृदय में उद्यम, कुरबानी, आत्म-त्याग, कृपा, बरिब्बिश, सहनशीलता पैदा होते रहते हैं । बच्चे के पालन पोषण, सुख आराम, भलाई तथा प्रफुल्लता के लिए शुभ इच्छाएँ, आशींवाद माँ के मन-चित्त-अन्तहकरण में धस-वस-रस कर सहज स्वभाव ही उत्पन्न तथा प्रकट होती रहती है । इससे स्पष्ट है कि माँ-प्यार की भावना में से बच्चे की भलाई के लिए सारे गुण तथा ख्याल उत्पन्न होते हैं, जिसमें बच्चे का पालन-पोषण होता रहता है । यह 'माँ-प्यार' अथवा 'मोह' की छत्र-छाया बच्चे पर उतनी देर तक रहती है, जब तक बच्चा माँ के ख्यालों, इच्छाओं तथा प्यार भावना के परायण या सुर में रहता है । जब बच्चा चतुर एवं खुदगर्ज होकर, 'माँ' की प्यार भावना से 'बेसुर' होकर अपनी मन-मर्जी करता है, तो वह 'माँ-प्यार' के स्नेह एवं शुभ कामनाओं से वंचित हो जाता है । वह अपने कर्मों का परिणाम भोगता एवं ठोकरें खाता है

जिसके लिए वह स्वयं जिम्मेवार होता है । तात्पर्य यह है कि यदि बच्चा खुदगर्ज होकर 'माँ - प्यार' से दूर हो जाता है, तब वह अपने कर्मों का परिणाम स्वयं भोगता है । फिर भी माँ के हृदय में 'माँ - प्यार' के शुभ ख्याल तथा आशीर्वाद उसी प्रकार कायम रहते हैं तथा जब भी बच्चा अपनी चतुराई तथा मनमर्जी से दुखी होकर माँ के पास वापस आता है, तब 'माँ' उसे पुनः गले लगाती है तथा अपना स्नेह, प्रेम तथा शुभ आशीर्वाद देती है ।

जे अति क्रोप करे करि धाइआ ॥

ता भी चीति न राखसि माइआ ॥

(पृ ४७८)

ठीक उसी प्रकार हम जीव, जो उसके अंश हैं, मैं - मेरी में आकर, द्वैत भावना में, माया की लपेट में अथवा पाँच कामादि वासनाओं के वशीभूत होकर लापरवाही करते हैं तथा उसके प्यार से मुंह मोडते हैं, तब उस सद - बखिंद इलाही माता के 'प्रसाद' से वंचित हो जाते हैं । परन्तु फिर भी यदि सत्संग द्वारा, जीव की आत्मा किसी प्रकार जाग उठे तथा ठगनी माया के जाल में से निकलने के लिए परमात्मा की या 'इलाही - माता' की शरण आये, तब 'इलाही माता' अपने बिरद (इलाही कर्त्तव्य) का पालन करती हुई, उस पर मेहरवान होती है तथा फिर उसे यह सब रंग, रस, रूप आदि का आनन्द उठाने की शक्ति प्रदान करती है ।

जो सरणि आवै तिसु कंठि लावै

इहु बिरदु सुआमी संदा ॥

(पृ ५४४)

जो तेरी सरणाई हरि जीउ तिन की करहि प्रतिपाल ॥

(पृ १३३३)

कर्ता ने अपने 'कवाओ' द्वारा जल, थल, हवा, आकाश तथा पाताल में वनस्पति, पशु, पक्षी तथा कीट - पतंगों के रूप में अनेक प्रकार की सृष्टि की रचना की । सिर्फ रचना ही नहीं की अपितु इसको भांति - भांति के अनेक रंग, सुगन्धि, स्वाद, सूरत तथा आकार द्वारा प्रेम से अलंकृत किया ।

क्या यह सब कर्त्ता का 'प्रसाद' नहीं ? अनेक प्रकार के अति सुन्दर फूलों में से यदि हम किसी भी फूल के सौन्दर्य का, उसके रंगों का, उसकी सुगन्धि का

तथा उस पर झूम – झूम कर बावरे हुए भौरे के दृश्य का आनन्द नहीं उठाते तथा शहद की मक्खी की भाँति उसका आन्तरिक रसपान नहीं करते, तब इसका तात्पर्य यह नहीं है कि 'गुर – प्रसादि' नहीं है । अपितु हमारी अपनी चतुराई तथा मैल के कारण हम उपरोक्त बरिष्ठाशों का आनन्द नहीं उठा पाते तथा अपने आप ही इस 'प्रसादि' से वंचित रह जाते हैं ।

इसी तरह अनेक प्रकार के फलों में वह रस – रूप होकर अपना 'प्रसादि' दे रहा है । परन्तु क्या हम कोई फल खाने से पहले उसकी बनावट के सौन्दर्य का आनन्द उठाते हैं! उसके रंगों का सौन्दर्य अनुभव करते हैं! अपितु अनेक बार तो जीभ – रस या खाने का स्वाद भी अच्छी तरह नहीं लेते । क्या इन सब की उपेक्षा करके हम उसकी ओर से लगातार की जा रही 'बरिष्ठाश' अथवा 'गुर प्रसादि' से अपने आप को वंचित नहीं कर लेते?

माँ – बच्चे के मानसिक तथा शारीरिक सम्बन्ध में प्यार – भावना की तार हमेशा बंधी रहती है। यह तार बच्चे के जन्म से पहले बेशक गुप्त (latent) होती है, परन्तु बाद में बच्चे के 'रूठने' या 'विमुख' हो जाने पर भी मिटती नहीं। दूसरे शब्दों में, 'माँ – प्यार' की भावना है तो अटल, परन्तु यह त्रिगुणी नियमों की सीमा में है । फिर भी 'माँ' का हृदय 'सद बखसिंदु' तथा 'सदा मेहरवाना' है तथा माँ की अपने बच्चे के प्रति यह भावना किसी भी कारण मिटती नहीं । इसी कारण इस 'माँ – प्यार' या 'मोह' की दात परमेश्वर की बरिष्ठाश है । इसलिए आन्तरिक रूप में, परमेश्वर ही वास्तविक, मूल तथा इलाही माता है । यह 'इलाही माता' ही समस्त जीवों को अर्थात् अपने उत्पन्न किये हुए अंशों को, अपने इलाही, अनन्त, अटल तथा स्थायी प्रेम से लाड लडाती, 'खेल खिलाती', 'सद बरिष्ठां', 'सदा मेहरवान' 'अउगुण को न चितारे', 'अणमंगिआ दान' प्रदान करती रहती है। इसी को गुरबाणी में 'सतिगुर प्रसादि' कहा गया है । क्योंकि यह 'प्रसादि' या बरिष्ठाश हमारे किसी श्रम या कुशलता पर आधारित नहीं है । यह तो प्रेम स्वरूप परमेश्वर के अस्तित्व में से सुगन्धि की तरह सहज – स्वभाव, अपने – आप ही सदैव उत्पन्न होकर उमड़ कर प्रकाशित हो रही है । 'गुर प्रसादि' नियमबद्ध नहीं है तथा न ही इसके लिए कोई शर्त है । यह तो परमेश्वर का सहज – स्वभाव, सदैव, अटल,

असीम प्रकाश है, 'महक' है, दात है । जो किसी भी कारणवश न तो घटती है, न बढ़ती है, जैसे कि सूर्य की धूप! इस लाभदायक तथा सुखदायक धूप के लिए न हमने कभी कोई माँग की, न उद्यम, न साधना । अपितु यह तो हमें सहज-स्वभाव, अपने-आप सदैव मिल रही है । इसलिए यह पूर्णतया परमेश्वर की बख्शिशा अथवा 'प्रसाद' है ।

इसी प्रकार हमें अन्य अनेक 'प्यार की बख्शिशाओं' परमेश्वर दाता से बिन माँगे, सदैव मिल रही हैं, जैसे पानी, अग्नि, अनाज, फल आदि । आश्चर्यचकित करने वाली बात यह है कि सृष्टि की रचना के साथ ही यह समस्त अनन्त बिन-माँगी इलाही बख्शिशा भी, अकाल पुरुष ने हमारे लिए बाहुल्य में प्रदान कर दी तथा इनके सदैव मिलते रहने का प्रबन्ध भी कर दिया ।

तेरीआ सदा सदा चंगिआईआ ॥

मै राति दिहै वडिआईआं ॥

अणमंगिआ दानु देवणा कहु नानक सचु समालि जीउ ॥ (पृ. ७३)

समस्त जीवों में ईश्वर की 'ज्योति' होने कारण हम सब जीव परमेश्वर के 'अंश' हैं । अकाल पुरुष ने अपने 'एक कवाउ' द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों-रूपों वाली अनन्त सृष्टि रच दी तथा साथ ही अपने 'अंश' की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक ही बार अनन्त तथा असीम बख्शिशा प्रदान कर दी ताकि हम निश्चिन्त एवं बेपरवाह होकर त्रिगुणी मायिकी दुनियाँ के 'खेल' अथवा 'प्रपंच' में अपना-अपना पार्ट (part) अदा करते हुए 'लोक सुरवी' तथा 'परलोक सुहेला' हो सके।

वास्तव में जो कुछ भी 'इलाही कवाउ' से उत्पन्न हुआ है, वह सब 'गुर-प्रसादि' ही है । वह परमेश्वर आप ही 'प्रेम-पुरुष', 'अति-प्रीतम', 'माता-पिता' है । इसलिए उसका 'कवाओ' या 'रचना' भी इलाही प्रेम का ही प्रकटाव अथवा प्रकाश (projection) है । इसे बाणी में 'हुक्म' कहा गया है । इसलिए इलाही प्यार के प्रकटाव या प्रकाश की क्रिया (process) ही उसकी 'बख्शिशा, मेहर, 'कृपा' तथा 'गुरप्रसाद' है ।

सृष्टि की 'चाल' का एक खास प्रवाह है । परन्तु कभी कभी इस की 'चाल'

में 'ज्वार-भाटा', उबाल या उछाल भी आ जाता है, जैसे तूफान, बाढ़ आदि। इसी प्रकार मनुष्य की भावनाओं में भी उछाल या उबाल आते हैं। जिस प्रकार माँ के हृदय में अपने बच्चे के प्रति सहज ही प्यार की धारा (रें) बहती रहती है। परन्तु कभी कभी बच्चे के बिछड़ने पर प्यार की यह भावना वैराग्य रूप धारण करके आँसुओं के रूप में बह उठती है। इसी प्रकार जब बच्चा भोले-भाव किसी प्यार भरी हरकत से माँ का दिल जीत लेता है, तब माँ के हृदय में बच्चे के प्रति असाधारण प्यार उमड़ आता है। इस तीव्र माँ-प्यार के मनोभावों के उछाल में माँ का सम्पूर्ण अस्तित्व पिघलकर उसकी असाधारण हरकतों में प्रकट होता है और वह बच्चे को अनोखे ढंगों से लाड करती, खेल खिलाती, सुन्दर प्रेममयी शब्दों से सम्बोधित करती है। उसके प्रेम भरे हृदय की गहराईयों में से, बच्चे के प्रति अनेक शुभ-इच्छाएं तथा आशीर्वाद सहज ही प्रस्फुटित होते हैं। माँ का सारा रक्त ही प्रेम से पिघलकर 'दूध' का रूप धारण करके उसके वक्ष से बह उठता है।

यह सारी खेल माँ-प्यार की प्रेम-भावना के तीव्र वेग तथा उछाल का प्रकटाव या 'जादू' है। इस प्रकार यह कुदरत के असाधारण तरंग या उछाल, कई बार प्रकृति के नियमों से बाहर होकर प्रकट होते हैं।

ठीक इसी तरह, परमेश्वर के भक्त या 'प्यारे', जब कभी भोलेपन में 'उस के प्यार' में मतवाले होकर, श्रद्धा-भावना की तीव्रता में सहज-स्वभाव कोई श्रद्धा भेट प्रस्तुत करते हैं, तब माँ की भाँति ही अपने 'प्यारे भक्त' की अनोखी, भोलेभाय प्रेम-भावना के उत्तर (response) में, परमेश्वर भी अपने 'प्यारे भक्त' पर रीझ कर उछलता है। तब परमेश्वर अपनी इलाही बख्शिशाओं - 'नाम', 'प्रेम पिआला' तथा 'सेवा' आदि तथा अन्य अनेक मुंह मांगी बख्शिशाओं की भरमार कर देता है, जिसे गुरबाणी में गुर प्रसादि अथवा 'नदरि करम' कहा गया है। सिक्ख इतिहास में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

भावनी भगति भाइ कउडी अग्र भाग राखै

ताहि गुर सरब निधान दान देत है।

(क.भा.गु. १११)

यहाँ पर एक नुक्ता समझने की आवश्यकता है कि बच्चे के लिए प्यार की भावना, साँसारिक 'माँ' के तन-मन में धँसी हुई होती है। उसके हर प्रकार के

रख्यालों, सोच एवं कार्यों में उसकी यह 'प्यार - भावना' अपने आप उत्पन्न होती तथा सहज ही हरकत में आती है। इसी प्रकार 'प्रेम - रौं' या बख्शिशाश या 'गुरप्रसादि' सदैव, अटूट, लगातार एवं असीम है। यह इलाही माता - पिता के अस्तित्व में से उमड़ कर, उछल कर तथा प्रकाशित होकर सृष्टि के कण - कण में प्रवेश तथा प्रवृत्त होकर समस्त जीवों को 'जीवन - दान' देता है। इस लगातार 'प्रेम - रौं' के प्रवाह (flow) का नाम ही 'गुरप्रसादि' है। इसकी 'चाल' को ही 'हुक्म' कहा गया है।

यह इलाही 'जीवन - रौं' की चाल 'जीव' में तब तक बहती रहती है, जब तक जीव स्वयं इस प्रवाह में चतुराई अथवा अहम् द्वारा कोई विघ्न न डाले। सूर्य की धूप से हम तब तक गर्मी ले सकते हैं जब तक सूर्य की धूप से दूर न हो। यदि हम सुखदायी धूप से 'वंचित' होते हैं, तब इसमें हमारी त्रुटि है - न कि सूर्य की। जब 'जीव' परमेश्वर को भूल कर विमुख हो जाते हैं, तब इलाही बख्शिशाश अथवा 'गुर प्रसादि' के प्रवाह में विघ्न पड़ जाता है, जीव इलाही 'बख्शिशाश' से वंचित हो जाता है। खुदगर्ज बच्चे की भांति 'गुर प्रसादि' की फुहार की ठण्डक से वंचित होकर, माया के आधीन 'जो मै कीआ सो मै पाइआ' अनुसार कर्म करता तथा परिणाम भोगता है।

यहाँ मूल बात ईश्वर की 'भूल' या 'याद' में है। जब हम अपनी 'इलाही माता' को भूल जाते हैं, तब हम स्वयं ही गुरप्रसादि के प्रवाह में विघ्न डाल देते हैं तथा इससे अपने आप ही वंचित हो जाते हैं। यदि पुनः हम 'भूल' में से निकल कर, 'इलाही माता' की 'याद' अथवा 'सिमरन' में लग जायें, तब हमारे मन की डोरी इलाही प्रवाह के साथ जुड़ जायेगी तथा हम पुनः 'गुरप्रसादि' की छत्र - छाया में इलाही प्रेम का आनन्द उठा सकेंगे।

दुखु तदे जा विसरि जावै ॥

भूखु विआपै बहुबिधि धावै ॥

(पृ. ९८)

तुधु चित आए महा अनंदा जिसु विसरहि सो मरि जाए ॥

(पृ. ७४९)

दूखु तदे जदि वीसरे सुखु प्रभ चिति आए ॥

(पृ. ८१३)

इसी लिए सुखमनी साहिब में पंचम पातशाह ने यह उपदेश दिया है -

जिह प्रसादि छतीह अंग्रित खाहि ॥

तिसु ठाकुर कउ ररवु मन माहि ॥

जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि ॥

तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि ॥

जिह प्रसादि रंग रस भोग ॥

नानक सदा धिआइऐ धिआवन जोग ॥

(पृ २६९)

जिह प्रसादि आरोग कंचन देही ॥

लिव लावहु तिसु राम सनेही ।

जिह प्रसादि तेरे सगल छिद्र ढाके ॥

मन सरनी परु ठाकुर प्रभ ताकै ॥

जिह प्रसादि आभूखन पहिरीजै ॥

मन तिसु सिमरतु किउ आलसु कीजै ॥.....

जिह प्रसादि बाग मिलख धना ॥

रारवु परोई प्रभु अपुने मना ॥

जिह प्रसादि तेरा सुंदर रुपु ॥

सो प्रभु सिमरहु सदा अनूप ॥

जिह प्रसादि तेरे कारज पूरे ॥

तिसहि जानु मन सदा हजुरे ॥

(पृ २७०)

चौरासी लारव योनियों में से केवल इन्सान को ही परमात्मा ने तीक्ष्ण बुद्धि प्रदान की है। जब कि शेष योनियों को केवल जीवन निर्वाह योग्य बुद्धि प्रदान की है। समस्त योनियों का शिरोमणि होने कारण, मनुष्य को परमेश्वर ने अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि की दात प्रदान की इससे मनुष्य अनेक उक्तियाँ- युक्तियाँ, उधेड़-बुन तथा चतुराईयां दिखला कर अपने कर्ता, 'इलाही माता', 'पिता परमेश्वर' के 'अस्तित्व' को ही भूलकर विमुख हो जाता है। 'इलाही हुक्म' को भुलाकर, त्रिगुणों के नियमों के आधीन कर्म करता एवं परिणाम भोगता है। बाकी चौरासी लारव योनियों में सीमित बुद्धि होने के कारण, वे 'अन्तर्गत लिखे' 'हुक्म' की 'रजा' में सहज

एवं भोलेपन में ही जीवन व्यतीत करते हैं । इसलिए उनका सहज ही विकास हो रहा है । इसी कारण गुरू साहिबान ने मानव जीवों को यह उपदेश दिये हैं—

छोडि सगल सिआणपा साचि सबदि लिव लाइ ॥ (पृ. ५१)

तजहु सिआनप सुरि जनहु सिमरहु हरि हरि राइ ॥ (पृ. २८१)

गुर की मति तू लेहि इआने ॥

भगति बिना बहु डूबै सिआने ॥ (पृ. २८८)

एहड़ तेहड़ छडि तू गुर का सबदु पछाणु ॥ (पृ. ६४६)

मन सिआणप छोडीऐ गुर का सबदु समाले ॥ (पृ. ४४०)

हमारे इलाही माता—पिता को ज्ञान था कि इन्सान अपने अहम् के आधीन, तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा युक्तियाँ तथा चतुराईयों द्वारा अपने दाता परमेश्वर को भूल सकता है । इसलिए आदि से ही परमेश्वर ने हम विमुखों (prodigal sons) को 'भूल' में से निकाल कर याद में अथवा 'गुरप्रसादि' की स्नेहमयी सुरवदायी छत्र—छाया में पुनः लाने के लिए धुर से गुरू, पैगम्बर, पीर, फकीर, साध, संत, महापुरुष, गुरुमुख प्यारे आवश्यकता अनुसार संसार में भेजे । उन्होंने उस समय के अनुसार जीवों को परमार्थ की ओर लगाने के लिए आत्मिक उपदेश दिये ।

साध पठाए आपि हरि हम तुम ते नाही दूरि ॥ (पृ. ९२९)

साध रूप अपना तनु धारिआ ॥

महा अगनि ते आपि उबारिआ ॥ (पृ. १००५)

उपरोक्त विचार से यह सिद्ध होता है कि सृष्टि की रचना के समय, अकाल पुरुष ने एक ही बार में अपने 'कवाओ' द्वारा सब कुछ बना दिया तथा इसमें अपनी 'ज्योति' रख कर इसको चलाने के लिए हुकम द्वारा सारे प्रबन्ध कर दिये । यह सब कुछ 'प्रेम—पुरुष' अकाल पुरुष की बख्शिशा तथा 'गुरप्रसादि' का अटल प्रतीक है । इसी लिए उसको बाणी में—

सब बखसिंदु सदा मिहरवाना सभना देइ अधारी ॥ (पृ. ७१६)

कहा गया है। इसी तरह गुरबाणी भी धुर से, परमेश्वर की बरिष्वाश, सतिगुर प्रसादि अथवा 'आत्मिक देन' है। परमेश्वर अथवा हमारी इलाही माता के हृदय में अपनी अंश के लिए अथाह प्रेम भाव परिपूर्ण है। इसलिए बाणी में अकाल पुरुष को 'प्रीतम', 'अति प्रीतम', 'प्रेम-पुरुष' आदि शब्दों से संबोधित किया गया है।

अति प्रीतम मन मोहना घट सोहना प्रान अधारा राम ॥ (पृ ५४२)

तूं प्रीतम तूं प्रान अधारे ॥

तुम ही पेखि पेखि मनु बिगसारे ॥ (पृ ७४०)

'मेहर', 'बरिष्वाश', 'प्रसादि', 'गुर प्रसादि' की भावनाएँ इसी इलाही 'प्रीत प्यार' के रंग तथा अंग हैं।

सँसारिक माँ के हृदय में भी अपने बच्चे के लिए अथाह प्यार होता है तथा वह अपने बच्चे का बिछुड़ना सह नहीं सकती। वह भूले या बिछुड़े हुए बच्चे को खोजती रहती है तथा उसको पुनः अपने गले लगाकर, अपनी गोद का स्नेह तथा माँ-प्यार का सुख देने के लिए आतुर रहती है। अपने बच्चे को सन्देश भेज-भेज कर, उसको लौट आने की प्रेरणा देती रहती है।

इसी प्रकार हमारी 'इलाही माता' परमेश्वर भी अपने अंश से बिछुड़ना सह नहीं सकती। इसलिए उसने समस्त सृष्टि के अन्दर जीवन के प्रवाह में अपने 'प्रेम की तार' प्रवेश कर दी है। यह इलाही प्रेम का 'खिंचाव', 'तार' अथवा वेग (flow) अकाल पुरुष की मेहर, बरिष्वाश, गुर प्रसादि का 'प्रतीक' है। यह प्रत्येक जीव के 'अन्तर्गत लिखा' हुआ है तथा रवि रहिआ भरपूर है। यह प्रेम का खिंचाव एवं प्रवाह सदैवीय काल रहित, असीम तथा सदा कायम है।

हरि जी माता हरि जी पिता हरि जीउ प्रतिपालक ॥

हरि जी मेरी सार करे हम हरि के बालक ॥

सहजे सहजि खिलाइदा नहीं करदा आलक ॥

अउगुण को न चितारदा गल सेती लाइक ॥ (पृ ११०१)

चौरासी लाख योनियाँ तो भोले-भाव तथा सहज स्वभाव ही अपने

‘हुक्मी’ – अकाल पुरुष की ओर उसके हुक्म के ‘गुर प्रसादि’ रूपी प्रवाह की गति में ‘सुर’ होकर बही जा रही है। परन्तु मनुष्य अपने प्रबल ‘अहम’ तथा तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा हर चीज़ की छान-बीन तथा परख करता है, उसके विषय में अपने मन की रंगत अनुसार परिणाम निकालता है। इस प्रकार अपने ‘कर्त्ता’ परमेश्वर के विषय में भी कई प्रकार के सवाल-जवाब, उक्तियाँ-युक्तियाँ, चतुराईयाँ, शंके तथा फिलास्फियाँ दिखला कर, परमेश्वर के अस्तित्व तथा उसकी बरिष्वाश पर किन्तु करता है। यह ‘किन्तु’ करता हुआ कई बार तो ‘नास्तिकता’ तक पहुँच जाता है। इस प्रकार मनुष्य आत्मिक श्रद्धा तथा विश्वास की ‘तार’ या ‘प्रवाह’ से बेसुर होकर इलाही बरिष्वाश अथवा ‘गुरप्रसादि’ से वंचित हो जाता है।

व्यक्तियों के आपसी सम्बन्ध की तार(connection) एक दूसरे के भरोसे पर निर्भर होती है। यह उनको ‘सुर’ में रखती है तथा वे आपस में आन्तरिक आदान-प्रदान करते हैं। जब विश्वास की तार टूट जाये, ढीली हो जाये, तब उनका मेल-जोल (connection) नाम मात्र, थोथा तथा लाभहीन हो जाता है। अर्थात् उनके मन आन्तरिक रूप से न मिलने के कारण (lack of inner communication) उनके विचारों, इच्छाओं, कल्पनाओं में अन्तर (difference) हो जाता है। वे बाहर से तो चाहे एक साथ रहते हों तथा व्यवहार करते हों परन्तु आपस में आन्तरिक रूप से बेसुर हो जाते हैं। इस कारण उनमें आन्तरिक मेल-जोल, साँझ अथवा आदान-प्रदान नहीं हो पाता।

इसी प्रकार जब चतुराईयाँ अथवा शंकाओं के कारण श्रद्धा-भावना में विध्न पड़ जाये, तब परमेश्वर से हमारा ‘आन्तरिक मेल-जोल (spiritual communication) नहीं होता, जिस कारण हम ‘दैवीय-प्रकाश’ – बरिष्वाश ‘गुरप्रसादि’ से वंचित हो जाते हैं। इसमें दोष ‘गुरप्रसादि’ का नहीं – हमारी लापरवाही तथा अज्ञानता का है।

जो दिलि मिलिआ सु मिलि रहिआ

मिलिआ कहीऐ रे सोई ॥

(पृ ७२५)

मिलिए मिलिआ न मिलै मिलै मिलिआ जे होइ ॥

अंतर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीए सोइ ॥

(पृ. ७९१)

इसके मूल कारण निम्नलिखित हैं- -

१. परमेश्वर के अस्तित्व से **श्रद्धाहीन** होकर उसको भूल जाना या उससे **विमुख होना** ।

२. परमेश्वर की बरिच्छा अथवा **गुरप्रसादि से अनजान या लापरवाह होना**।

३. परमेश्वर के **हुक्म रूपी 'इलाही प्रवाह' में से अपनी चतुराई द्वारा बेसुर होकर, दैवीय प्रेम की तार से टूट जाना** ।

परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग ॥

वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग ॥

(पृ. १३५)

इसी कारण गुरबाणी में परमेश्वर को 'भले' तथा 'विमुख' जीवों के लिए उपदेश द्वारा इस प्रकार प्रेरणा की गई है-

साध संगति उपजै विसवास ॥

बाहरि भीतरि सदा प्रगास ॥

(पृ. ३४३)

सत संगति महि बिसासु होइ ॥

हरि जीवत मरत संगारी ॥

(पृ. ४०१)

साध संगति बिना भाउ नही ऊपजै

भाव बिनु भगति नही होइ तेरी ॥

(पृ. ६९४)

सत संगति मिलै त दिइता आवै हरि राम नामि निसतारे ॥

(पृ. ९८१)

नानक प्रीति लगी तिन राम सिउ भेटत साध संगत ॥

(पृ. ५२१)

साध संगति भउ भाउ सहजु बैराग है ।

(वा.भा.गु. ३/१३)

साध संगति भै भाइ निज घरि पाइआ ।

(वा.भा.गु. ३/२०)

हमने इन गुरबाणी की पंक्तियों का भावार्थ समझकर पाठ करना है तथा

इनका अभ्यास करते हुए पुनः सतिगुर की चरण-शरण जाना है । फिर से 'सतिगुर प्रसादि' के पात्र बनकर अपना जीवन सफल करना है ।

प्रभ की सरणि सगल भै लाथे दुख बिनसे सुखु पाइआ ॥

दइआलु होआ पारब्रहमु सुआमी

पूरा सतिगुरु धिआइआ ॥

(पृ. ६१५)

प्रभ की सरणि गही सभ तिआगि ॥

गुर सुप्रसंन भए वडभागि ॥

(पृ. ८६६)

सतिगुरू जी ने इस समस्त आत्मिक खेल का बड़ा सरल तथा एकमात्र साधन बतलाया है-

मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥

(पृ. १२)

इस पूरे लेख की विचार का निचोड़ इस प्रकार है-

'गुरप्रसादि' इलाही प्यार का प्रतीक तथा प्रकटाव है ।

हाँ जी यह 'गुरप्रसादि' - ईश्वर का प्रेम - आलिंगन है, उसका स्नेह है, उसका लाड - लडाना है, उसका खेल खिलाना है, उसका उत्साह है, उसका चाव है, उसकी खुशी है, उसके प्यार का उछाल है, उसके प्यार का उबाल है, रस है, महा रस है ।

इस प्रकार **यह उसके प्यार का -**

बह - बह जाना है

प्यारे की मन मोहक नजर है

उसकी नजर का जादू है

नजर का नशा है

इस नशे की मस्ती है

मस्ती की रौं है

रौं का प्रवाह है

जो -

रस रूप है
प्रकाश रूप है
सहज – स्वभाव है
सर्व – व्यापक है!

हाँ जी! 'गुर प्रसादि' की बात – अनन्त है, अथाह है, अमित है, अटूट है, सदैवीय है, भरपूर है, लगातार है । यह –

ओत प्रोत लिपटी है
कानून रहित है
'जोर न मंगणि देणि न जोर' है।

इसका दाता –

'सद बख्शिंद' है
'सदा मिहरवाना' है
'अउगुण को न चितारै' है
सर्वगुण परिपूर्ण है
सर्व व्यापक है ।

'गुर प्रसादि' की बख्शिंश ही हमारे ख्यालों, भावनाओं, मनोभावों तथा जीवन के हर पक्ष में प्रवृत्त है । 'गुर प्रसादि' के अथाह – अमित – अटल सागर में, हम जीवन जीते हुए, व्यवहार करते हुए, इसी में समा जाते हैं ।

जिस प्रकार 'धूप', सूर्य के अस्तित्व का **'प्रतीक' या चिन्ह है**, उसी प्रकार **'गुरप्रसादि'** ही परमेश्वर के अस्तित्व का **'प्रतीक' है ।**

जहां गुर प्रसादि है, वहां परमेश्वर स्वयं है ।

जहां परमेश्वर है वहां 'गुर प्रसादि' है ।

इस तरह परमेश्वर ही गुरप्रसादि है तथा 'गुरप्रसादि' ही परमेश्वर है ।

ऐसे सर्वव्यापक, सर्वत्र परिपूर्ण, सर्व सुरवदायी, सदीवी, प्रेम स्वरूप **'गुर प्रसादि'** के शुकराने में सहज स्वभाव अटूट सिमरन करना ही **हमारे जीवन का मनोरथ**

तथा मन्तव्य है ।

देवणहार दातारु कितु मुखि सालाहीऐ ॥
जिसु रखै किरपा धारि रिजकु समाहीऐ ॥
कोइ न किसही वसि सभना इक धर ॥
पाले बालक वागि दे कै आपि कर ॥
करदा अनद बिनोद किछू न जाणीऐ ॥
सरबधार समरथ हउ तिसु कुरबाणीऐ ॥
गाईऐ राति दिनंतु गावण जोगिआ ॥
जो गुर की पैरी पाहि तिनी हरि रसु भोगिआ ॥

(पृ ९५७)

